मंदिर निर्माण की नागर, द्रविड़ व वेसर शैलियाँ तथा उनकी विशेषताएँ

आकांक्षी मिश्रा
शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध–सार

गुप्तोत्तर काल में सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच में मंदिरों के नवीन रूप का विकास हुआ जिसमें मंदिर वास्तु ने ऊपर को उठते हुए शिखर का रूप धारण कर लिया था। ये मंदिर आकार–प्रकार और निर्माण–शैली की दृष्टि से भिन्न–भिन्न हैं। देश, काल, सम्प्रदाय तथा रुचि के कारण मंदिरों की बनावट में विभेद मिलता है। भारत में प्रासादों के निर्माण की प्रक्रिया जिस रूप में प्रारम्भ हुई तथा जिस क्रम में उसका विकास होकर उसे सैद्धान्तिक स्वरूप प्राप्त हुआ, यह सम्पूर्ण प्रक्रिया बड़ी जटिल एवं क्लिष्ट है, ऐसी स्थिति में उससे पर रहते हुये अभीष्ट प्रयोजन के प्रसंग में यहां इतना निदर्शन करना पर्याप्त है कि मध्य–युग तक आते–आते भारत में प्रासाद निर्माण की प्रक्रिया ने सुव्यवस्थित स्वरूप प्राप्त किया तथा विविध रूपाकारों में भारत के कई भागों में विविध प्रकार के प्रासाद निर्मित हुये। प्राचीन भारतीय शिल्पशास्त्रों जैसे–मानसार, मयमत, समरांगणसूत्रधार, ईशानशिवगुरुदेवपद्धति, मानसोल्लास, कामिकागम, सुप्रभेदागम और शिल्परत्न आदि में मन्दिर निर्माण की विभिन्न शैलियों का उल्लेख मिलता है। इनमें तीन शैलियाँ प्रमुख हैं–नागर, द्रविड़ और वेसर। मंदिर स्थापत्य की नागर शैली का सम्बन्ध उत्तर भारत, द्रविड़ शैली का दक्षिण भारत तथा वेसर शैली का सम्बन्ध दक्कन क्षेत्र से है। इन शैलियों के मन्दिरों में क्षेत्रीय विभेद व विशेषताएँ भी देखने को मिलती हैं।

मुख्य शब्दः *मंदिर, नागर, द्रविड़, वेसर, विश्वकर्मा, मय, मयमत, स्थापत्य–कला, उत्तरापथ, दक्षिणापथ, आर्य, अनार्य, प्रासाद, विमान, गर्भगृह, शिखर, आगमग्रन्थ और समरांगणसूत्रधार।*

प्रस्तावना

वास्तु और शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार भारतीय वास्तु–विद्या के दो प्राथमिक स्कूल हैंः– 'विश्वकर्मा तथा 'मय' परम्परा। विश्वकर्मा जिसे आर्य परम्परा, विश्वकर्मा परम्परा, उत्तरी परम्परा अथवा नागर शैली कहा गया। मय परम्परा जिसे अनार्य परम्परा, मय परम्परा, दक्षिणी परम्परा अथवा द्रविड़ शैली कहा गया है। विद्वानों का मानना है कि जहाँ विश्वकर्मा देवताओं का रथपति था और उसको वसुओं (देवविशेषों) में परिगणित किया गया है, वहां विश्वकर्मा नामक एक मनुष्य भी था जो वास्तु–विद्या का प्रवर्तक हुआ और कालान्तर में स्थापत्य–शास्त्र एवं कला में विश्वकर्मा–स्कूल परम्परा का वह जन्मदाता तथा विकासक माना गया है।

दैवीय संस्कृति के साथ सनातनकाल से इस देश में आसुरी संस्कृति का समानान्तर रूप में निर्देश किया गया है। ये असुर कौन थे? अनार्य जाति के प्रति ब्राह्मण आदि ग्रंथों में जो असुर आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है उसको विद्वानों ने इस देश के आर्येत्तर निवासियों का बोधक माना है। वास्तव में जिसको हम आसुरी सभ्यता कहते हैं वह भी इसी देश के मूल–निवासियों की सभ्यता है। इस सभ्यता की वास्तु–कला के अनार्य का अत्यन्त प्राचीन नाम जो आर्य–ग्रन्थों में मिलता है वह है मय। 'मय' असुर था अतः आसुरी वास्तु–विद्या की यह दूसरी परम्परा 'मय–स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों शैलियों के अपने–अपने सुन्दर निदर्शन होते हुये भी एक दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव भी कम प्रत्यक्ष नहीं है। इन दोनों शैलियों के सम्मिश्रण से भारत के दक्कन क्षेत्र में एक अन्य शैली दृष्टिगोचित होती है जिसे वेसर शैली कहा जाता है।

उद्देश्य

- भारत के मंदिरों की स्थापत्य–कला का अध्ययन करना।
- भारतवर्ष में निर्मित किये गये मंदिरों की शैलियों तथा उनमें उत्पन्न क्षेत्रीय विभेद व विशेषताओं का अध्ययन करना।

नागर शैली

नागर शब्द का लोकप्रिय एवं सार्वजनिक अर्थ है–नगर का या नगर से सम्बन्धित है।[1] वास्तु–कला की नागर शैली से हमारा तात्पर्य उस शैली से है जिसके विकास के निदर्शन स्वरूप भव्य–भवन विमान अथवा मंदिर, प्रासाद अथवा हर्म्य बड़े–बड़े नगरों में बने वे सब नागर नाम से विख्यात हुए और ये बड़े–बड़े नगर विशेषकर उस समय मध्य–देश के शोभास्पद थे। अतः कालान्तर पाकर उत्तरापथ के इस प्रदेश (मध्य–देश) की वास्तु शैली का नाम नागर शैली हुआ होगा। नागर शैली की अपनी मौलिक पद्धतियाँ अत्यन्त प्राचीन हैं उन्हीं के आधार पर विद्वानों ने नागर को द्रविण की अपेक्षा प्राचीन बताया है।

कुछ विद्वान महाकाव्यों के काल को नागर शैली का जन्मदाता मानते हैं, तथा कुछ अन्य विद्वान नागर–स्कूल का जन्म भारशिव नागों (ईसा की लगभग दूसरी शताब्दी) के समय हो चुका था, ऐसा मानते हैं। कुछ इतिहासकार नागर शैली के जन्मदाताओं में नाग–प्रभाव स्वीकार करते हैं। विद्वानों का मानना है कि नागों अथवा असुरों की वास्तुकला को नागर शैली का नाम दिया गया। अतः हिन्दू आर्यों ने नागर शैली को नागों अर्थात् असुरों से ग्रहण की। इस प्रकार आर्यों की अपेक्षा आर्येतरों–नागों अथवा असुरों की वास्तुकला इस देष में प्रथम जन्म एवं विकास को प्राप्त हुई तथा बौद्धों ने भी नागों का ही अनुसरण किया था। बौद्धों के चैत्य नागों के चैत्यों से न केवल प्रभावित ही हैं, वरन् अनुप्राणित भी हुये थे। विष्णु पुराण में भी वर्णित है कि नागर–कला का उत्थान नाग राजा 'शेष' के द्वारा हुआ। शिल्पषास्त्रों में भी निर्माण स्थल को वास्तु–पद की संज्ञा देकर उस पर वास्तुपुरुष के प्रकल्पन की व्याख्या की गई है। विश्वकर्माप्रकाश में वर्णित है कि वास्तुपुरुष नागाकृति का होता है। विष्वकर्मा –स्कूल को ही कालान्तार में नागर स्कूल की अभिधा मिली। कुछ इतिहासकारों ने भी इसका समर्थन किया है और नागर शब्द के दो अर्थ बताये हैं :– एक अर्थ 'नगर' 'शहर' या 'कस्बे' या 'पुर' से है जिसका अर्थ 'हृदय' (मन) से लगाया गया है जहाँ ब्रह्मा का निवास स्थान है। नागर शब्द का दूसरा अर्थ 'विश्व' से लगाया है और लिखा है –

"Another meaning of Nagar is Universe (Visva). The temple, the Universe in a likeness, is Nagar for it rests on the Naga, the vastupurusha, who supports the Universe and is sesa, the remainder."

अर्थात् नागर शब्द का दूसरा अर्थ है 'ब्रह्माण्ड–विश्व'। प्रासाद विश्व की प्रतिकृति–नागर के नाम से बोधव्य है, क्योंकि यह नाग या वास्तुपुरुष पर स्थित है, यही नागर विश्व का आधार है, इसी को कोषकार एकमात्र शेष कहते हैं।

ईसा की छठी शताब्दी ईसवी के पूर्व उत्तरापथ की वास्तुविद्या अथवा विश्वकर्मा–स्कूल के वास्तु–विद्या के प्रमुख ग्रन्थों विश्वकर्माप्रकाश, मत्स्यपुराण तथा वृहत्संहिता आदि में नागर–स्कूल के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता है। स्कन्दपुराण में नागर शब्द को नगर क्षेत्र से सम्बन्धित किया गया है, जिसमें बड़े–बड़े शहरों तथा मंदिरों का निर्माण किया गया। नागर शैली का सर्वप्रथम शास्त्रीय उल्लेख अग्निपुराण में मिलता है। अग्निपुराण में वर्णित 45 प्रकार के मंदिर नागर प्रकार के मंदिरों के नाम हैं। नागर शब्द का प्रयोग स्वतत्र रूप से समरांगणसूत्रधार तथा ईशानशिवगुरूदेवपद्धति में किया गया है। समरांगणसूत्रधार के अध्याय–18 'नागरादि–संज्ञा' में नागर शब्द के निम्नलिखित पर्याय उल्लिखित हैं –

नगरं मन्दिरं दुर्गं पुष्करं साम्परायिकम्।
निवासः सदनं सद्म क्षयः क्षितिलयस्तथा।।1।।

अर्थात नगर, मंदिर, दुर्ग, पुष्कर, साम्परायिक, निवास, सदन, सद्म, क्षय, क्षितिलय–नगर के पर्याय हैं, जिनसे नगर का विकास सूचित होता है।

अपराजितपृच्छा में प्रासाददेशानुक्रमाधिकार के अन्तर्गत **अहिराजेषु सान्दारो नागरस्य प्रषयस्ते** वाक्य आया है। अहिराजेषु पाठ को क्षत्रेषु मानते हुये नागर का सम्बन्ध अहिच्छत्रा से स्थापित करते हैं, जो कि दक्षिणी पांचालों की राजधानी थी। अपराजितपृच्छा के अनुसार नागर का मूल घर पांचाल देश था और जहाँ से नागर ब्रह्माणों ने अपनी शैली सम्पूर्ण भारतवर्ष में विकसित की।

समरांगणसूत्रधार में जिन प्रासादों का वर्णन 'नागरसंज्ञा–मेर्वादिनागरप्रासाद' देकर किया गया है, प्रायः वे ही अविकल मत्स्यपुराण में हैं अतः भले ही मत्स्यपुराण में नागर संज्ञा न दी गई हो परन्तु मत्स्यपुराण में प्रतिपादित ये बीस प्रासाद नागर–शैली के ही हैं। मत्स्यपुराण का समय विद्वान लोग गुप्तकाल में मानते हैं और नागर शैली के मंदिरों का प्रारम्भिक विकास भी इसी समय हुआ होगा। मत्स्यपुराण में प्रतिपादित जिन 20 प्रासादों का वर्णन है इन प्रासादों का उल्लेख भविष्यपुराण, वृहत्संहिता, अग्निपुराण तथा अन्य गुप्तकालीन ग्रंथों में भी प्राप्त होता है। अतः समरांगणसूत्रधार के 63वें 'अध्याय–मेर्वादिविंशिकानागरप्रासाद' में वर्णित बीस नागर प्रासाद विशुद्ध रूप से नागर शैली के माने जाने चाहिये। समरांगणसूत्रधार के अध्याय–57 'मेर्वादिविंशिकानिरूपणम् में वर्णित प्रासादों को विशिष्ट नागर शैली के नमूने के रूप में माना जाता है–

विशिष्ट नागर–प्रासाद

1. मेरु
2. मन्दर
3. कैलास
4. त्रिविष्टप
5. पृथिवीजय
6. क्षितिभूषण
7. सर्वतोभद्र
8. विमान
9. नन्दन
10. स्वस्तिक
11. मुक्तकोंण
12. श्रीवत्स
13. हंस
14. रूचक
15. वर्धमान
16. वर्धमान
17. गज
18. सिंह
19. पद्मक
20. नन्दिवर्धन

समरांगणसूत्रधार के प्रासाद–वर्णन में केवल दो ही अध्यायों में नागर शब्द का निर्देश है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि समरांगणसूत्रधार के काल तक आते–आते नागर शैली के विभिन्न अवान्तर भेद हो चुके थे।

पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर नागर शिखर के आदिम रूप की कल्पना मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन एक वेदिका–स्तम्भ (मथुरा–संग्रहालय जे. 24) पर अंकित वास्तु के रूप में और कुछ लोग कुम्हरार (पाटलिपुत्र) के उत्खनन में मिले एक टीकरे पर अंकित मंदिर के रूप में करते हैं। कुम्हरार के टीकरे को देखने से जान पड़ता है कि भवन के कई खण्ड समेटकर एक कर दिये गये हैं और कई खण्डों वाला घर ही ऊपर की ओर सकरा होता हुआ शिखर की आकृति का बन गया है। बोधगया का महाबोधि मंदिर बिल्कुल इसी रूप का है। इसका प्राचीन नाम वज्रासन–गन्ध–कुटी–प्रासाद है।

अतः इसवी पूर्व पूर्वोत्तर भारत और मध्य–भारत में लकड़ी की जो गुम्मदाकार झोपड़ियाँ बनाई जाती थीं उनको नागर मंदिरों का आदिरूप माना जाता है। नागर शैली के मंदिरों का प्रारम्भिक स्वरूप गुप्तकालीन मंदिरों में दिखाई देता है। नागर शैली को आधार से लेकर

शिखर तक चतुरास्त्र कहा गया है। तथा आमलक को नागर शैली के मंदिरों का मुकुट बताया गया है। नागर विमान सात्विक है, यह वर्गाकार होता है, इसका क्षेत्र मुख्यतः हिमालय और विन्ध्य के बीच का भू–भाग बताया गया है। नागर शैली का क्षेत्र सम्पूर्ण आर्यों द्वारा ग्रहीत क्षेत्र माना गया जिसे हिन्दुस्तान के नाम से जाना जाता है। नागर शैली का क्षेत्र उत्तर में ताप्ती और महानदी तक विस्तृत है। नागर शैली के मंदिरों की तलछन्द योजना इस प्रकार है– गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप, मण्डप तथा अर्द्धमण्डप/ मुखमंडप। इस शैली के मंदिरों की ऊर्ध्वछन्द योजना निम्न प्रकार है– जगती, वेदिबन्ध, जंघा, वरण्डिका, षिखर, ग्रीवा, आमलक, और कलष।

उत्तर–भारत की प्रासाद–कला में स्थानीय विकास दृष्टिगोचित होता है जिसके अनुरूप पश्चिमोत्तर भारत के जैन स्थापत्य–कला में नागर–शैली के विकासात्मक रूप के दर्षन होते हैं। नागर शैली की स्थापत्य–कला राजपुताना, मालवा, गुजरात, के हिन्दू तथा जैन मंदिर, मध्य–प्रदेश, बुन्देलखण्ड में खजुराहो तथा उड़ीसा में भुवनेश्वर, कोणार्क व पुरी के मंदिरों में परिलक्षित होती है। नागर शैली की स्थापत्य–कला का प्रभाव सुदूर दक्षिण (खान देश) तथा मथुरा–वृन्दावन के मंदिरों में भी परिलक्षित होता है। मध्य–प्रदेश तथा बुन्देलखण्ड के खजुराहो में नागर शैली के उत्कृष्ट मंदिरों के समूह को देखा जा सकता है। नागर शैली के मंदिर जिनका विकास आठवीं शताब्दी इसवी से लेकर 12वीं शताब्दी इसवी तक हुआ उनमें कई क्षेत्रीय विभिन्नताएँ व विशेषताएँ भी परिलक्षित होती हैं।

द्रविण शैली :–

मंदिर स्थापत्य की द्रविड़ शैली को राजस माना जाता है यह वर्गाकार होता है। इसका स्थान द्रविड़ देश है। यह षटभुजी, अष्टभुजी तथा उभरा हुआ (गजपृष्ठाकार) हो सकता है। द्रविड़ शैली के मंदिर दक्षिण भारत से सम्बन्धित हैं। द्रविड़ शैली के मंदिरों को विमान कहा जाता है। प्रारम्भिक चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल व पाण्ड्य कालीन मंदिर इस शैली से सम्बन्धित हैं। उत्तर–भारतीय ग्रंथ समरांगणसूत्रधार और अपराजितपृच्छा में द्रविण शैली के मंदिरों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार दक्षिण भारतीय ग्रन्थ जैसे मानसार, मयमत, ईशानशिवगुरूदेवपद्धति, काष्यपशिल्प और शिल्परत्न (सोलहवीं शताब्दी ईसवी का ग्रंथ) में भी द्रविण मंदिरों का वर्णन किया गया है। द्रविण शैली के मंदिरों का शिखर पिरामिड के आकार का होता है और इनकी ऊँचाई अधिक होती है। द्रविड़ शैली के मंदिरों की तलछन्द विशेषताएँ निम्नलिखित हैं– गर्भगृह, प्रदक्षिणापथ, अन्तराल, मुखमंडप, गोपुरम, (मुख्यद्वार)। द्रविड़ शैली के मंदिरों की ऊर्ध्वछन्द विशेषताएँ हैं– अधिष्ठान/वेदिबन्ध, पद/भित्ति, प्रस्तर/ मुंडेर, विमान, (शिखर) ग्रीवा और स्तूपिका। दक्षिण भारत के वास्तुशास्त्रों में नागर द्रविड़ और वेसर भारत के भौगोलिक विभाजन पर आधारित नहीं है। वरन् प्रासादों के आकार की शैली विविधता पर आधारित हैं[31] अर्थात् दक्षिण में द्रविण शैली में बने जाति विमानों में भी नागर या वेसर या द्रविड़ विमान या प्रासाद हो सकते हैं। जैसे– ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी का गंगैकोण्डचोलपुरम (कुम्भकोणम के निकट) के मंदिर का शिखर वर्तुलाकार है जिससे यह मंदिर स्थापत्य–कला की द्रविड़ शैली का वेसर प्रासाद है। जबकि श्रीनिवासनलुर (त्रिचनापल्ली जिले का) कोरंगनाथ मंदिर द्रविण शैली का नागर प्रासाद है। इसी प्रकार तंजौर का बृहदीश्वर मंदिर द्रविण या दक्षिण भारतीय शैली का द्रविण प्रासाद है।

वेसर शैली –

मंदिर निर्माण की वेसर शैली का उल्लेख उत्तर–भारतीय ग्रंथों में नही किया गया है। इस शैली का उल्लेख दक्षिण भारतीय ग्रंथों में ही मिलता है। कामिकागम के अनुसार वेसर का अर्थ है 'खच्चर' अथवा 'वर्णशंकर' अर्थात् 'मिश्रित' उपज। इसका सम्बन्ध दो वास्तु शैलियों द्रविण और नागर के मिश्रण से माना जाता है। तल–विन्यास में यह द्रविड़ भी हो सकता है तथा आकार और अलंकरण में नागर भी हो सकता

है।[35] दक्षिण भारतीय शास्त्रों में जो मंदिर आधार से लेकर स्तूपिका तक वृत्ताकार, अण्डाकार अथवा वृत्तायताकार अथवा नीचे से वर्गाकार हो और गले के ऊपर गोल हो उसे वेसर कहते हैं, परन्तु वेसर का स्वरूप अस्पष्ट है। वस्तुतः वेसर कोई स्वतन्त्र शैली नही है बल्कि यह नागर और द्रविड़ का मिश्रित रूप है। अतः मंदिर स्थापत्य की वेसर शैली विन्ध्याचल से लेकर एक ओर गोदावरी तक विस्तृत क्षेत्र में तथा दूसरी ओर कृष्णा नदी तक विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित थी। वेसर शैली के मन्दिर मुख्यतः कर्नाटक, महाराष्ट्र में होयसलों व कल्याणी के चालुक्यों के काल में बनवाये गये थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारत में मुख्यतः तीन प्रकार की मंदिर निर्माण शैलियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो नागर द्रविड़ और वेसर के नाम से जानी जाती हैं। इन शैलियों का कई अन्य क्षेत्रीय उपशैलियों में भी विभाजन देखने को मिलता है। यह तीनों शैलियाँ भारतवर्ष के मंदिरों में परिलक्षित होती हैं। हिन्दू मंदिरों के निर्माण की जो शैली प्रधान रूप से प्रस्फुटित हुई उसमें शिखरोत्तम आकार विशेष विकास को प्राप्त हुआ भारतवर्ष के तीन–चौथाई से भी अधिक भू–भाग पर इस आकार का आधिपत्य है। भारतीय स्थापत्य के मुकुटमणि हिन्दू–प्रासाद की छटा इन्हीं शिखरों में देखने को मिलती है। नागर शैली की अपनी मौलिक पद्धतियाँ अत्यन्त प्राचीन हैं उन्हीं के आधार पर विद्वानों ने नागर को द्रविण की अपेक्षा प्राचीन बताया है। यह सत्य है कि प्राचीन आर्यों की पर्णशालाओं अथवा पर्णकुटियों के आधार पर ही उनके भवन और देवभवन बहुत दिनों तक बनते रहे और मध्यकालीन प्रासाद वैभव में उनका प्रभाव पूर्णरूप से नागर मंदिरों के रूप में प्रकट हुआ। नागर शैली के मंदिर ताप्ती और महानदी के उत्तर (हिमालय और विंध्यक्षेत्र के बीच का भू–भाग) के सम्पूर्ण भौगोलिक भू–भाग में मुख्यतः परिलक्षित होते हैं, परन्तु आमलक युक्त वक्ररेखीय शिखर वाले मंदिर सम्पूर्ण भारतवर्ष के जिस भी क्षेत्र में दिखाई देते हैं वे मंदिर नागर शैली को प्रदर्शित करते हैं, जैसे– द्रविण क्षेत्र में निर्मित श्री निवासनलुर का कोरंगनाथ मंदिर द्रविण शैली में निर्मित एक नागर प्रासाद है। इस प्रकार भारत में नागर, द्रविड़ व वेसर प्रकार के मंदिर सम्पूर्ण भारत के किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में निर्मित हो सकते हैं तथा किसी सुनिश्चित भौगोलिक क्षेत्र से किसी एक ही शैली के प्रासादों को सम्बन्धित करना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है। अतः यदि कोई भी आमलक युक्त नागर शैली की विशेषताओं से युक्त मंदिर भारत के उत्तरी क्षेत्र के अतिरिक्त द्रविण या दक्कन क्षेत्र में भी निर्मित हैं तो वह मंदिर नागर शैली में ही निर्मित माना जायेगा।

सन्दर्भ सूची

1. स्टेला क्रैमरिश, द हिन्दू टेम्पल, भाग–1, मोतीलाल बनारसी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1976, पृष्ठ–287
2. तारापद भट्टाचार्य, कैनन्स ऑफ इण्डियन ऑर्किटेक्चर–ए शेड ऑफ वास्तुविद्या, पृष्ठ–303–315
3. वही, पृष्ठ– 303–315
4. पर्सी ब्राउन, इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू पीरियड्स), डी.बी.तारापोरेवाला सन्स एण्ड को–प्राइवेट लिमिटेड, बाम्बे, 400 001,1976, पृष्ठ–76–77
5. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्ता, भारतीय वास्तु–कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ–95
6. स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–287–288
7. ए. बी. एल. अवस्थी, ब्रह्मनिकल आर्ट एण्ड आइकोनोग्रॉफी, कैलाश प्रकाशन–76, खुर्शेद बाग लखनऊ, 1976, पृष्ठ–45
8. तारापद भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ–303–315
9. ए. बी. एल. अवस्थी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–44
10. स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–286–287
11. समरांगणसूत्रधार, अध्याय–18 : नागरादि– संज्ञा, श्लोक–1, पृष्ठ–23
12. प्रसन्न कुमार आचार्य, इण्डियन आर्किटेक्चर एकॉर्डिंग टु मानसार शिल्पशास्त्र, इण्डियन इण्डिया इण्डोलॉजिकल पब्लिकेशन पटना, 1979, पृष्ठ–74
13. समरांगणसूत्रधार, अध्याय–57 : मेर्वादिविंशिकानिरूपणम्
14. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, भारतीय स्थापत्य, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर–प्रदेश, 1968, पृष्ठ–263

15. समरांगणसूत्रधार, अध्याय–63, मेर्वादिविंशिकानागर प्रासादभूमिजा
16. वही, अध्याय–57 : मेर्वादिविंशिकानिरूपणम् ; द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–275
17. समरांगणसूत्रधार, अध्याय–63: मेर्वादिविंशिकानागरप्रासादलक्षणम् तथा अध्याय–60: श्री कूटादिषट्त्रिंषत्प्रासादलक्षणम्
18. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्ता, पूर्वोक्त, पृष्ठ–99–100
19. पर्सी ब्राउन, पूर्वोक्त, पृष्ठ–76–77 ; तारापद भट्टाचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ–134
20. मानसार, अध्याय–xliii, पृष्ठ–124–125 ; मारीचि संहिता, पटल–7 ; प्रसन्न कुमार आचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ–130, 176 ; द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–293 ; एम.ए. ढाकी, द इण्डियन टेम्पल फॉर्म्स इन करनाट इन्शक्रिप्शन एण्ड ऑर्किटेक्चर, अभिनव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–110016, 1975, पृष्ठ–9 ; अमर नाथ खन्ना, इण्डियन टेम्पल्स, आगम कला प्रकाषन, दिल्ली–110052, 2016, पृष्ठ–6
21. ईशानशिवगुरूदेवपद्धति, III ,अध्याय xxx, पृष्ठ–41,47 ; एम.ए. ढाकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–7 ; स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–287
22. कामिकागम, अध्याय–xlIx,1–2 ; स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–287
23. प्रसन्न कुमार आचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ–178
24. प्रसन्न कुमार आचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ–48,130–131,178 ; स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–286
25. स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–175–176
26. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–371 ; एम.ए. ढाकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–7–11
27. ए. बी. एल. अवस्थी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–44
28. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–265–266 ; एम.ए. ढाकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–14
29. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–265 ; स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–292,295
30. एम.ए. ढाकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–14–15
31. शिल्परत्न,xvi, 43–44,51–53 ; काश्यपशिल्प, xxv, पृष्ठ–19–20 ; देवालयचन्द्रिका, पृष्ठ–7 ; स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–294
32. स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–294–295
33. ईशानशिवगुरुदेवपद्धति, III.xxx.41b ; कामिकागम, xlix, 18–20 ; एम.ए. ढाकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–21
34. कामिकागम, xlix, 18–20 ; स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–291–292
35. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पूर्वोक्त, पृष्ठ–289,269 ; अमर नाथ खन्ना, पूर्वोक्त, पृष्ठ–6
36. ईशानशिवगुरुदेवपद्धति, Iv, अध्याय–xxxII, पृष्ठ–65 ; वैखानासागम vi, पंक्तियाँ 6–7 ; कामिकागम, xlix, पृष्ठ–124–127 ; प्रसन्न कुमार आचार्य, पूर्वोक्त, पृष्ठ–176
37. स्टेला क्रैमरिश, पूर्वोक्त, पृष्ठ–291–292 ; एम.ए. ढाकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–21, अमर नाथ खन्ना, पूर्वोक्त, पृष्ठ–6